पत्र युवा कवि के नाम

राइनेर मारिया रिल्के

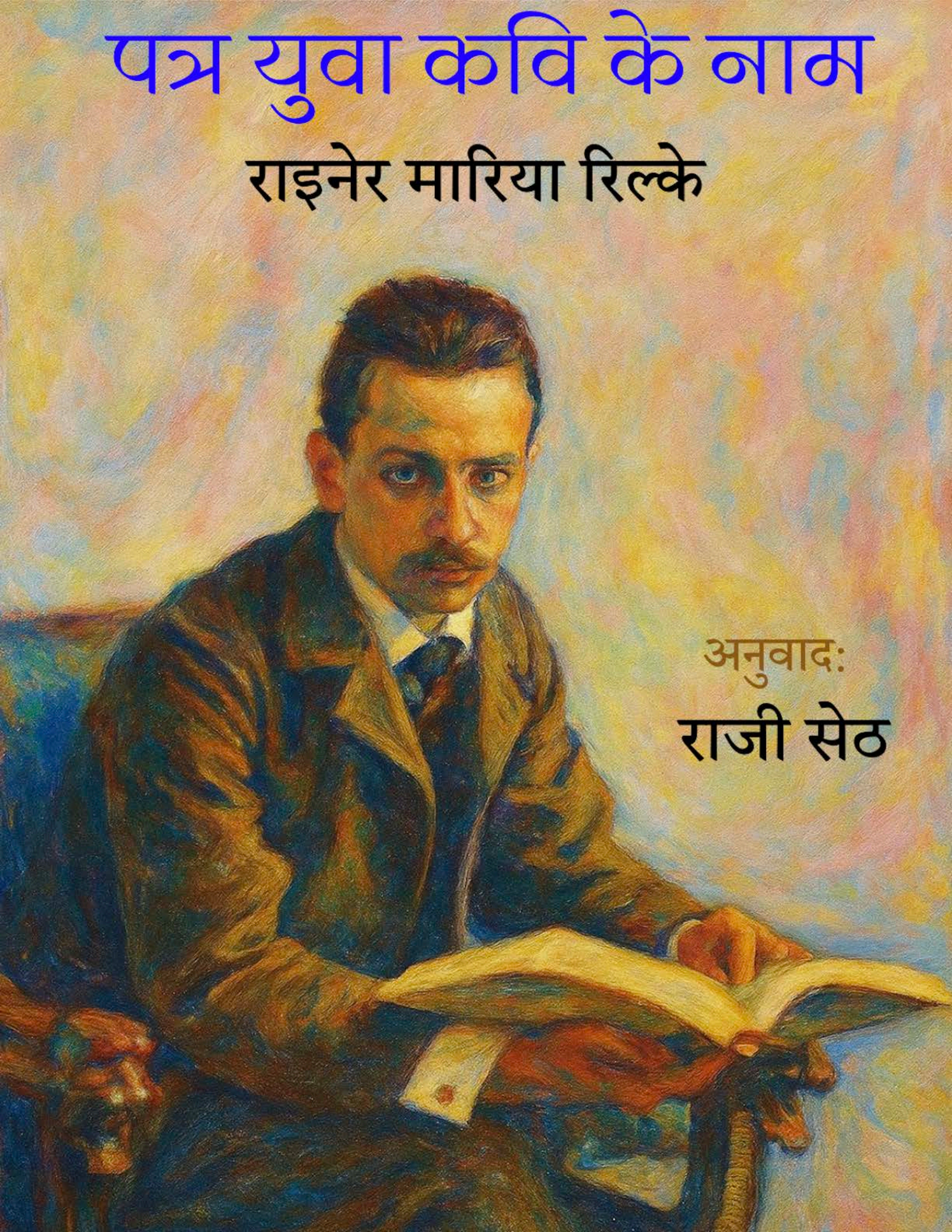

अनुवाद:

राजी सेठ

पत्र युवा कवि के नाम

राइनेर मारिया रिल्के

अनुवादः राजी सेठ

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: अगस्त, 2025

© राजी सेठ

रचनाकर्म, प्रेम, यौन-संबंध, एकांत, अवसाद और अदृश्य के साथ हमारे संबंध के बारे में सूत्रों जैसा निचोड़ -दस पत्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया है जर्मन के सुप्रसिद्ध साहित्यकार राइनेर मारिया रिल्के ने अपनी इस ख्याति प्राप्त छोटी-सी पुस्तिका में।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस पुस्तिका में जो पत्र संकलित किये गये हैं, वे पत्र किसी आत्मीय को नहीं, एक अपरिचित को लिखे गये थे।

प्रस्तुत पुस्तिका के पहले पत्र की बेबाकी और उपदेशात्मकता जिस तरह धीरे-धीरे हार्दिकता में बदलती गयी है, उससे यह अंदाजा लगाना कठिन है कि चार वर्षों (1904-1908) के इस पत्र-व्यवहार में उन दोनों की भेंट कभी नहीं हो पायी।

इसका अर्थ है कि रिल्के के भीतर हहराता हुआ, स्वतःस्फूर्ति तत्पर विराट है कि छोटे से प्रसंग का सहारा पाकर बजने लगता है। पत्रों को पढ़ते हुए यह अनुभूति लगातार बनी रहती है कि रिल्के पत्र- प्रेषक को ही नहीं, अपने काल को ही नहीं, पूरे दिक्-काल को संबोधित कर रहा है। अपने उत्कर्ष और उत्कटता में यह पत्र संबोधि-काव्य जैसे लगते हैं। देखते ही देखते कवि स्पंदित एकांत के उस कक्ष में प्रवेश कर जाता है जो इन पत्रों में चर्चित एक मुद्दा ही नहीं, पत्र लेखन के दौरान अर्जित हो चुकी एक आदीप्त भावावस्था है।

पत्र : युवा कवि के नाम भारत में पहली बार हिंदी में प्रकाशित ! रचना-कर्म से जुड़े नवलेखकों के लिए अनिवार्य रूप से एक पठनीय पुस्तक !

“... My gaze looks beyond to

another pure, oh so pure outline.”

“... How many of these regions of

space already were in me.”

-Rilke

रिल्के के अक्षांश पर

एक लंबी कहानी पर काफी मनोयोग से काम चल रहा था जब जर्मन कवि रिल्के के 10 पत्रों की यह पुस्तक हाथ लगी। अपना लिखते समय दूसरों की रचनाओं के प्रति जैसा बैठा-ठाला-सा भाव होता है, कुछ-कुछ उसी तरह की मानसिकता में मैंने इसे उठाया था। तब से अब तक कहानी में लौटने का संयोग नहीं बन पाया और इसका अनुताप भी मन में नहीं है।

यह एक अभूतपूर्व अनुभव है कि किसी पुस्तक को पढ़कर लगे कि जिस उद्बोधन से गुज़र रहे हैं उसे जीवन में बहुत पहले घट जाना चाहिए था । इतना पहले, जब कोई रचनाकर्म की सरहदों पर खड़ा ढेरों प्रश्नों और अछूती जिज्ञासाओं के बीचोबीच होता है और अपने होने की आश्वस्ति अपने कर्म की सार्थकता में टटोलता है। इन पत्रों का आकर्षण रचनाकर्म को लेकर ऐसी ही आंतरिक बातें है। ऐसे ठोस निर्वाक् कर देनेवाले उद्गार... प्रतिमानों की पड़ताल में रिल्के उस आत्यांतिकता तक गया है :

एक ही काम है जो तुम्हें करना चाहिए - अपने में लौट जाओ । उस कारण (केंद्र) को ढूंढने की कोशिश करो जो तुम्हें लिखने का आदेश देता है ...अपने से पूछो यदि तुम्हें लिखने की मनाही हो जाये तो क्या तुम जीवित रहना चाहोगे ?

यह आत्यांतिकता किसी नये लेखक को सदा के लिए उत्साहच्युत भी कर सकती है पर चिंतन में इतनी दूरी तक जा सकनेवाला रिल्के इन कठिनाइयों से बेध्यान लगता है क्योंकि उसके भीतर का लेखक पहले से ही उस गहरे तापस भाव में स्थित बैठा है। वहां दुर्गम में आस्था एक जरूरी सोपान है। दुर्गम में आस्था होनी चाहिए क्योंकि दुर्गम हमें कभी नहीं त्यागता। रिल्के के लिए प्रेम दुर्गम है, ईश्वर दुर्गम है और लेखन दुर्गम है। वहां 'परम' को प्रकट होने के लिए हमारी पीड़ा की ज़रूरत है। 'परम' को पा सकने की तड़प इन पत्रों में शामिल हर मुद्दे में दिखायी देती है। लगता है, यह उत्कर्ष रिल्के के संवेदन का चरित्र है।

इतने छोटे-से कलेवर में इतने सारे विषयों के बारे में सूत्रों जैसा निचोड़ एकदम चौंका देनेवाला लगा। यह देखकर भी आश्चर्य हुआ कि यह पत्र किसी आत्मीय को नहीं, एक अपरिचित को लिखे गए थे। पहले पत्र की बेबाकी और उपदेशात्मकता जिस तरह धीरे-धीरे हार्दिकता में बदलती गयी है, उससे यह अंदाजा लगाना कठिन है कि चार वर्षों (1904 1908) के इस पत्र-व्यवहार में उन दोनों की भेंट कभी नहीं हो पाई।

इसका अर्थ है कि रिल्के के भीतर हहराता हुआ, स्वतः स्फूर्त तत्पर विराट है कि छोटे से प्रसंग का सहारा पाकर बजने लगता है। पत्रों को पढ़ते यह अनुभूति लगातार बनी रहती है कि रिल्के पत्र - प्रेषक को ही नहीं, अपने काल को ही नहीं, पूरे दिक्-काल को संबोधित कर रहा है। अपने उत्कर्ष और उत्कटता में ये पत्र संबोधि-काव्य